श्रीहरिकृष्ण "प्रेमी"

आँखों में

लेखक

हरिकृष्ण "प्रेमी"

प्रकाशक

कलाधर-किरण-मंडल, लश्कर,

ग्वालियर

प्रकाशक की ओर से—

कलाधर-किरण-मण्डल की संस्थापना के मूल मे कतिपय भावुक लेखको की अन्तर्वेदना और आत्मप्रेरणा काम कर रही है। उन्ही के सहयोग और उन्हीं के हित-साधन मे इस मण्डल का अथ और इति है। अतएव, लेखको ही का आशीर्वाद और उन्ही की शुभ कामनायें हमे इस कार्य मे प्रवृत्त करा रही हैं।

'हृदय-तरंग-माला' इस उत्साह की एक उमग है; 'प्रेमी' जी की 'आँखो मे' उसका प्रथम प्रसार हुआ है। 'मण्डल' को 'प्रेमी' की प्रतिभा का यह प्रथम उपहार प्राप्त हुआ है। पाठकों की सेवा में इस भेट को रखते हुए हमे हृदय से प्रसन्नता हो रही है। यदि उन्हे इससे संतोष हुआ, तो वही हमारे उत्साह का कारण होगा।

लश्कर, ग्वालियर

संयोजक—
कलाधर-किरण-मण्डल

कलाधर-किरण-मण्डल

उद्देश्य—

१ हिन्दी के द्वारा सुन्दर, सरस और सुरुचिपूर्ण साहित्यिक रचनाओं का प्रकाशन करना।

२ हिन्दी के सत्साहित्य का विविध भाषाओं मे रूपान्तर प्रस्तुत कराना।

३ मडल के सदस्यों के लिए लेखन एवं अध्ययन सम्बन्धी सुविधाएं तथा साधन जुटाने का यथासभव प्रयत्न करना।

नियम—

१ सदस्य —

मंडल के उद्देश्य के अनुरूप साहित्य-सृष्टि करने वाले एवं सच्चे हृदय से सहयोग प्रदान करने वाले व्यक्ति इस मंडल के सदस्य हो सकेंगे।

२ प्रवेश शुल्क —

अ—मंडल के उद्देश्य के अनुरूप, कम से कम ७५ पृष्ठ की पुस्तक का, जिसे मंडल स्वीकृत करे, सर्वाधिकार।

अथवा

आ—कम से कम २००) एक मुश्त नकद।

३ प्रबन्ध —

प्रबंध का सारा भार मंडल के सदस्यो पर रहेगा और उन्ही की सम्मति से निर्वाचित मंडल का एक सदस्य संयोजक का कार्य करेगा।

४ प्रकाशन —

प्रत्येक पुस्तक के प्रकाशन के पहले उस पर मंडल के सदस्यो का अनुकूल बहुमत प्राप्त होना आवश्यक है।

५ संचालन —

इनके अतिरिक्त कार्य-संचालन के लिए आवश्यक नियमों का विधान मंडल समयानुसार तैयार कर सकेगा।

उपहार

अर्घ

जिसके हृदय-द्वार पर मैं भिखारी
के रूप मे आया था, आज उसी
को अपनी "आँखो मे" अर्घ
देते लाज लगती है। जिसने
मेरे हृदय को बासे फूलसा फेंक
दिया, मेरी कोमलता को कुचल
दिया, पर, पीड़ा की मधुर भीख
दी, मेरी "आँखो मे" उसी की
स्मृति की अमरता है। जिसके
प्रथम अनुभव मे आकर्षण था,
प्रथम दर्शन मे लूट, प्रथम
मिलन मे चोरी और विरह
मे मीठापन-मादकता, उसकी
निष्ठुरता की आँखो मे मेरी—
"आँखो मे" अर्पित है।

"प्रेमी"

आँखों में

किसके अन्तस्तल मे भर दूँ
    अपनी आँखों का सन्देश ?
किसने इस जग मे देखा है
    मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

हरिकृष्ण 'प्रेमी'

परिचय

गुना के काव्य-निर्झर वेदनावतार "प्रेमी" और उनकी इस कमनीय कृति का परिचय देने का मीठा भार उठाते हुए मुझे, हर्ष हो रहा है अपने सौभाग्य पर; और, खेद हो रहा है अपनी अयोग्यता पर। यदि कविता की "नीरव भाषा" समालोचक-संसार में भी मान्य होती, तो, शायद मुझे अपनी अक्षमता का यह धृष्ट प्रदर्शन न करना पड़ता। किन्तु, "सर्वः कांतमात्मीयं पश्यति" के अनुसार, "प्रेमी" को मुझ से बढ़कर कोई परिचायक न मिलने और मुझमें उनका आग्रह टालने की शक्ति न होने के कारण, मुझे उनकी इस मधुर रचना से अपनी इन पंक्तियों की "मख़मल में टाट की गोट" लगाने को बाध्य होना पड़ा।

कविता-कामिनी को सजी-सजाई नटखट रमणी की अपेक्षा भोली-भाली और स्वाभाविक वन-कन्या के रूप में अधिक तन्मयता से देखने वाले कवियों में "प्रेमी" का भी एक स्थान है। वे केवल कविता लिखते समय ही नहीं, आठों पहर कवि रहते हैं और सच्चे कवि रहते हैं। कविता को अपने जीवन का सर्व-व्यापक और स्थायी अंग बना लेने वाले कवियों में, मैं "प्रेमी" को एक अलग स्थान देता हूँ। कौन जानता है, कि, उन्हें, कविता से इतने अभिन्न होने के कारण ही क्या-क्या न सहना पड़ा है!

मशीनों की अनवरत हृदयहीन "खड-खड", उद्यानों के कृत्रिम कुटीर या प्रासादों की कोमल सुख-शय्याओं मे पड़े-पड़े, कल्पना को कोंच कोंच कर, अवहनीय शृङ्गार के भार से कविता का कचूमर निकालने वाले कवि-पुगव क्या जाने कि, विश्व के कोलाहल से दूर निस्तब्ध निर्जन में वेदना-निवेदन करने वाले सुकुमार निर्झर के स्वर मे स्वर मिला कर रोना कैसा होता है, नीरव निशा के अँधियारे आँचल मे सिसक-सिसक कर रह जाने वाले सितारो की ओर अपलक ताकते-ताकते रातें विता देना किसे कहते हैं, पतझड के निष्ठुर पदाघातों से पद-दलित पीलेपन की नीरस निराशा के कर्कश "खर-खर"—स्वर को पत्ते-पत्ते में खोजते फिरने मे हृदय का पीडा से भर आना क्या होता है, और, समाज के तिरस्कृत अर्धमुकुलित फूलों के सूखे मुखों के मुरझाए उच्छ्वासों को हृदय मे चुन-चुन कर भर लेने पर भी शुष्क अधरों पर विरस हास का बरबस अभिनय करने मे कितनी वेदना होती है।

हमारे "प्रेमी" के दुर्भाग्य के उपर्युक्त अनेक स्थायी अंग, उन्हें चाहे कवि न बना पाए हों, पर पागल अवश्य बना चुके हैं—पीडित अवश्य बना चुके है—और कभी का बना चुके है।

"प्रेमी" का जन्म वेदना मे हुआ है, जीवन वेदना मे बीत रहा है और अवसान ? किसी अज्ञात करुणा का यह प्रक्षुब्ध सागर भविष्यद्-गिरि के गर्भ से धीरे-धीरे निर्झर के रूप मे निकल-निकल कर किसी दिन साहित्य-संसार के किसी सूने और सूखे भाग को

अवश्य प्लावित कर देगा, यह कई सरस साहित्यिक ऋषियों का आशीर्वाद है।

देने के लिए "प्रेमी" के पास केवल एक संदेश है, जो उनकी पंक्ति-पंक्ति से—अक्षर-अक्षर से—फूट रहा है। सदेश नया नही है। सारा ससार इससे परिचित है। फिर भी, अपरिचित है। अपने ही हृदय की वात जिससे इस सुन्दर रूप मे निकले उस हृदय को कौन पीड़ित हृदय प्यार न करेगा? "प्रेमी" की लोक-प्रियता का रहस्य भी इसी में है!

एक बीस-इक्कीस वर्ष के मादक कवि-हृदय से जितनी आशा की जा सकती है, उससे कही अधिक मद, कही अधिक रस, कही अधिक पीडा, और क्या कहें, कही अधिक करुणा "प्रेमी" रसिकों के प्यालों में ढाल दिया करते है।

साहित्योपवन के मदान्ध गजो द्वारा यदि यह सरस सुमन खिलते ही कुचल न दिया गया, तो कौन कह सकता है कि इसके काव्य-रस पर, भविष्य में, असंख्य रसिक भौंरे न ललचाएँगे?

यदि आदि कवि महर्षि वाल्मीकि का विशाल हृदय करुणा के आकस्मिक आघात से एक व्यथा-भरे अभिशाप के रूप में प्रवाहित होकर अखिल विश्व को प्लावित कर सकता है, तो यह भी सभव नहीं, कि प्रेमी का कोमल हृदय करुणा, उन्माद और वेदना के त्रिशूल को आठ-पहर अन्तरतम के आचल में पालते हुए भी सहृदयों के हृदयो में एक हलकी-सी टीस उत्पन्न न कर सके।

जिसके हृदय ने, कभी किसी पीड़ित के घावों पर सहानुभूति की पटी बाधी है, कभी किसी दुखिया को "दुखिया की आँखों" से देखा है, कभी किसी व्यथित की वेदना को "आँसुओं की भाषा" मे पढ़ा है, वह "प्रेमी" के अस्त-व्यस्त उष्ण उच्छ्वासों को उनके अक्षर-अक्षर में अनुभव किए बिना न रहेगा। अस्तु।

"प्रेमी" का वर्तमान जीवन आज से लगभग बीस वर्ष पहले से प्रारंभ होता है। ग्वालियर-राज्य के नागरिक विभव-विलासों की मोहक छटा तरसती ही रह गई और उन्होंने गुना के पार्वत्य वन-वैभव को अपने प्रथम रोदन से मुखरित कर दिया। वनदेवी अपने सूने सुमनों की बिखरी मालाओं में मुँह छुपा कर बरसों बाद, एक बार अवश्य मुसकाई होगी—अपने उस स्वल्प किन्तु अपूर्व सौभाग्य पर! किन्तु, वह मुसकान शीघ्र ही म्लान हो गई, जब वर्तमान नागरिक शिक्षा-लयों की नीरस मशीनें निष्ठुर बनकर उस वनवासी को एक बार अपनी कड़ी गोद मे खींच ही लाईं—न मानी। आखिर कब तक तरसती रहती! उन्हें भी तो उस खिलौने को कुछ दिन अपना बंदी बना कर रखने की लालसा थी! कई साल यों ही बीते। एक दिन जब आसपासके मायावादी कह ही रहे थे कि, "खूब किया जो तुमने इसको ला पिजड़े मे बन्द किया" चिड़िया चुपचाप अपने पुराने परि-चित स्वच्छंद समीर के प्यारे प्रवाह में उसी ओर बह गई। तब से अब तक पिजडा खुला ही पडा है।

वेदना-वाद के कँटीले पथ के नवजात पागल पथिक "प्रेमी" को अपने पागलपन के पीछे घर में ही निर्वासित होना पड़ा। कभी-कभी "पागलपन" को प्यार करने वाले कुछ लोभी भौंरें उन्हें अपनी कृतियों का सार्वजनिक रसास्वादन कराने को भी बाध्य करते रहे। "प्रेमी" ने अनमने हृदय से सब कुछ स्वीकार किया। हृदयवालों के सच्चे आग्रह को टालना तो जैसे उन्होंने सीखा ही नहीं है! उसी का फल है, कि, पत्रकारों की और प्रकाशकों की प्रवीण दृष्टि भी उनपर पड़ गई है। आज उनके सम्मुख भिन्न-भिन्न साहित्यिक आकर्षण भिन्न-भिन्न रूपों में उपस्थित हैं। इनमें यदि कोई सचमुच इतना सात्विक और स्वाभाविक हुआ कि उनके हृदय का सदुपयोग कर सके, तो वह अवश्य ही उन्हें अपनी ओर एक बार खींचकर सदाके लिए खींच लेगा!

गुणों के साथ "प्रेमी" में कई उल्लेखनीय दोष भी हैं, जिनमें से दो तो लोगों को बहुत ही खटकते हैं। एक तो, वे अपनी आर्थिक और शारीरिक उन्नति के विषय में किसी भी स्वजन या गुरुजन का ज़रा भी उपदेश सुनना पसन्द नहीं करते, और दूसरे, वे परले सिरे के लापरवाह हैं। इन दोनों दारुण दोषों ने उनका सांसारिक जीवन जैसा बना रक्खा है, वह उन्हीं के सहने की चीज़ है। सामान्य व्यक्ति तो उसके स्मरण-मात्र से ही विचलित हो जाते हैं; फिर भी, वे अपने उक्त दोषों को कवि जनोचित ही समझते हैं, यह स्वाभाविक ही है।

"प्रेमी" के परिचय का नशा अब कुछ उतार पर आ गया है। लेखनी फिर रुकने की लालसा से अब उनकी प्रस्तुत पुस्तक का परिचय देने को प्रस्तुत होती है।

"व्यथित हृदय की पहली झाँकी
उर के ये थोड़े उद्गार।
शेष, सिन्धु-सा छिपा हुआ है
अन्तस्तल मे हाहाकार!!"

"प्रेमी" की इन पक्तियों के अनुसार यह कृति उनके हृदय का केवल आंशिक प्रदर्शन है—सर्वांगीण नही! उनकी विस्तृत जीवन डायरी का यह एक पृष्ट है—केवल एक पृष्ठ!

सिसकते शीत का वह कैसा अद्भुत कँपित अरुणोदय था, जिसने अकस्मात् आकर "प्रेमी" के दग्ध हृदय मे एक अपूर्व आग लगा दी! धीरे-धीरे, अन्तर का उच्छ्वसित धुआँ वाष्प बन-बनकर आँखों से मँड-राने लगा। आँसू टपकने लगे। कविता बनने लगी। छदों की जंजीरे लेकर पिगल पहुँच ही न पाया, व्याकरण की बेडियाँ उठाकर शब्द-शास्त्र आही न सका, तुकों का जाल लेकर कोप आ ही रहा था, अलकारों का भार लादे नायिका-भेद दूर ही था कि, 'आँखों मे' कविता बनकर गुपचुप तैयार हो गई!

"प्रेमी" की कविता मे, गति है, यति नही। शोभा है, शृङ्गार नही। प्यार है, विकार नही। भाव है, भाषा नहीं। अनुभूति है,

अभिव्यक्ति नही। चोट है, प्रहार नही। शिथिलता है, निर्जीवता नहीं। बेहोशी है, नशा नहीं। त्याग है, नीरसता नही। क्रम भग है, रस-भंग नही। आकर्षण है, माया नही। विस्तार है, आडम्बर नही। प्रलाप है, निरर्थकता नही। ताप है, अभिशाप नही। क्या-क्या है, और क्या-क्या नहीं, यह केवल कल्पना से नही, प्रत्यक्ष अनुभव से जाना जा सकता है।

यदि साहित्य के सहृदय रसिक गोतेखोर "प्रेमी" की "आँखों मे" डूबकर उनके अंतस्तल की थाह लेंगे, तो, शायद, वे सहानुभूति का एक गहन-करुण उच्छ्वास छोड़े बिना ऊपर न आ सकेंगे।

किसी अज्ञात विमल विभूति के प्रति उनका उन्माद, प्रेम, स्मृति विरह, उपालभ, मनुहार, वेदना, करुणा और न जाने क्या-क्या, इस कृति मे इतने वेग से उमड पडता है कि उसमे साहित्य-संसार के सामान्य बंधनों का अक्षुण्ण रह जाना असंभव हो जाता है। फिर भी, इस वेग में कुछ कमी है, कुछ अधूरापन है। आँसुओं के अनंत उन्मत्त उष्ण सागर ढलका चुकने पर भी आँखों मे वहुत कुछ छिपा रह जाता है। इसी अधूरी, अव्यक्त, अस्पष्ट अभिव्यक्ति मे ही हमे उनके हृदय की अतुल-अगाध अनुभूति की एक अस्फुट झिलमिल झलक पाकर इस समय वरवस सतोष कर लेना पडता है। प्रेमी के ये उद्गार हृदय-स्पर्शी होने पर भी तुतले है, मीठे होने पर भी विश्रृङ्खल है, विस्तृत होने पर भी अधूरे है। हृदय की बात कई वार पूरी हो-होकर भी

पूरी न होने पाती है, कि, पुस्तक का अंत हो जाता है। अंतिम पंक्ति के अंत में हम "प्रेमी" का एक अधूरा विवश उच्छ्वास सुनकर दिल थाम कर रह जाते हैं।

कट्टर उपयोगिता-वादियों का अनुदार संसार चाहे इस वैज्ञानिक युग मे "प्रेमी" के उद्गार इस रूप मे "सुन्दर" स्वीकार न करे, पर हृदय वालों का विपुल विस्तार उन्हें, सम्मान न सही, प्यार की दृष्टि से अवश्य देखेगा।

"प्रेमी" उन भावुकों मे हैं, जो न तो संसार से इतने ऊँचे उठ जाते है कि प्यार को तिरस्कार की दृष्टि से देखने लगें और न इतने नीचे गिर जाते हैं कि विकार को प्यार करने लगे। उनकी कविता उस निष्कपट सामान्य श्रेणी के भावुक मानवों की स्पष्ट भाषा है, जो हृदय रखते है, प्यार करते है, कष्ट सहते हैं और रोते हैं। "प्रेमी" की कविता का रंग पानी के रंग के समान है, जो भिन्न भिन्न कोटि के कला पारखियों के भिन्न-भिन्न रंग के हृदय-पात्रों मे भिन्न-भिन्न रूप धारण कर लेता है।

"प्रेमी" की इस कृति मे, एक ही से भावों की लगातार लड़ियाँ खोजने वाले, श्रृङ्खला बद्ध साहित्य के कट्टर पक्षपाती पाठकों को कुछ निराशा अवश्य होगी। वे इसमें कही कही पर तो, छन्द-छन्द पर भाव-परिवर्तन होते देखेंगे और कभी-कभी पास ही पास दो परस्पर विरोधी विचार। यह विश्रृङ्खलता "प्रेमी" के उस उन्माद की

द्योतक है, जिसे अस्थिरता से अत्यधिक प्रेम है। एक ही से विचारों की लडियाँ जोडते रहने का प्रयत्न "प्रेमी" या तो करते ही नही या कर ही नही पाते। उन्हें तो हृदय में जब जो जैसी भावना ज्यों ही उठे, त्यों ही उसे तभी जैसी-की-तैसी अपनी अटपटी भाषा मे व्यक्त कर देने का मधुर रोग है।

फलतः इस पुस्तक के सभी छंदों में चमत्कार के चातकों को भी एक ही सा रस नहीं मिलेगा। फिर भी, वे इसके सरल प्रवाह में बहते-बहते बीच-बीच मे चौक पडेगे—जो चाहते होंगे, वही पाकर। चाहे थोडे ही से क्यों न हों, पर इस कंटक-कानन मे कुछ सुमन ऐसे भी हैं, जिन की अमर सुगंध एक बार सूंघते ही सदा के लिए सहृयता के हृदय मे बस जाती है, समालोचना का निर्भय सूच्यग्र चाहे उनके अन्तस्तल को निरतर कुरेदकर छिन्न-भिन्न ही क्यों न करता रहे।

'प्रेमी' को अपनी मौलिकता पर भी कुछ गर्व होना स्वाभाविक ही है। उनकी प्रत्येक बात चाहे जैसे हो—उनकी अपनी होती है। यों तो बहुश्रुत कुशल समालोचक-प्रवर, चाहे तो भगीरथ प्रयत्न करके, बडे से बड़े आचार्यों की रचनाओ में भी किसी पूर्ववर्ती कवि के भावों से साम्य दिखला दे सकते है, किन्तु, इसका निर्णय करना कभी-कभी कठिन हो जाता है कि कौनसा भाव चुरा कर लाया गया है, कौनसा जानबूझ कर सुन्दर-तर बनाकर अपना लिया गया है और कौनसा अनायास अनजान में ही किसी से मिल गया है। तथापि, इसमें तो कोई संदेह

नहीं कि इन तीनों में से प्रथम प्रकार कवि को पंगु बनाने वाला एवं अत्यंत घृणित है और हमें हर्ष है कि हमारे "प्रेमी" उससे कोसों दूर है और रहेंगे।

"प्रेमी" की कविता, उपदेशक और कवि के अंतर को, ज़रा और स्पष्ट कर देती है! उपदेशक के हृदय पर एक विशिष्ट उद्देश्य—एक निश्चित आदर्श आठों पहर अपना एकाधिपत्य जमाए रहता है। उसके विविध उद्गारों में उसी की अमरता की अमिट छाप रहती है। उसके उद्गार पीछे चलते हैं और आदर्श आगे! अथवा, यों कह सकते हैं कि उपदेशक का हृदय ग्रामोफोन की तरह है, जिसके भावी संगीत की पूर्व कल्पना रेकार्ड चढ़ाते ही, कोई भी मर्मज्ञ, बहुत पहले ही से, कर ले सकता है। किन्तु, कवि का हृदय उस सरल वीणा की तरह है, जिसमें कोई विशिष्ट स्वर-माला पहले से संचित नहीं रहती! भिन्न-भिन्न परिस्थितियों और भावनाओं के अंगुलि-स्पर्श से, उसके तारों से तत्काल भिन्न-भिन्न स्वर निकलते हैं, जिनकी पूर्व कल्पना नहीं की जा सकती! ग्रामोफोन में बन्धन है—रूढ़ि है—पिष्टपेषण है, पर, वीणा में स्वतन्त्रता है—नवीनता है—प्रकृत वादक को तात्कालिक कृति दिखलाने की गुंजाइश है! इस पुस्तक के पाठकों को स्पष्ट प्रतीत होगा कि इसके कई छन्दों में प्रेम के आदर्शों में परस्पर किञ्चित् अनैक्य-सा हो गया है। यदि इसके रचयिता उपदेशक होते तो वे एक विशिष्ट आदर्श से अन्त तक चिमटे रहते, चाहे बेचारी सरलता, स्वाभाविकता और भाव प्रवाह का

दम ही क्यों न घुटने लगता। पर वे ठहरे कवि! आदर्श और उद्देश्य उनकी कला के पीछे-पीछे चलते है—आगे नहीं, उनके मानस का संगीत भावुकता के असीम हृदय पर सहसा जो विद्युत् रेखा खींच जाता है, आदर्शवादी संसार पीछे से उसी को नियमों की स्वर-लिपि में बाँधने का प्रयास किया करता है! वे संसार की रसिकता से श्रद्धा के नहीं, स्नेह-अर्घ्य के अधिकारी है, क्योंकि वे उसे उसके आदर्शों के अनुकूल नहीं, हृदय के अनुकूल सन्देश देते हैं। वे उपदेशक की तरह पूज्य नहीं, कवि की तरह प्यारे है। उनकी मुक्त वीणा रेकार्डों की रूढ़ि के बन्धनों से बँधी हुई नहीं है। उसकी स्वच्छन्द स्वर-लहरी जब तक भावनाओं के अनन्त आकाश में गूँजकर लय नहीं हो जाती तब तक, रसिक श्रोताओं को उसके विषय में मधुर जिज्ञासा बनी ही रहती है!

यों तो, ससार के सम्मुख, हृदय के अनिर्वचनीय भावों का प्रकाशन-सौष्ठव भी, अस्वाभाविक ही कहा जा सकता है, परन्तु वास्तव में परिश्रम और प्रतिभा—अस्वाभाविकता और स्वाभाविकता के अन्तर का परिणाम सौन्दर्य नहीं—प्रयत्न ही हो सकता है! किसी-किसी वनकुसुम में बागों के सुरक्षित सुसिंचित कृत्रिम कुसुमों से कहीं अधिक सौन्दर्य, कहीं अधिक आकर्षण, कहीं अधिक रस और कहीं अधिक सौरभ होता है। पर क्या इतने ही से वह अस्वाभाविक मान लिया जाता है? देखना यह पड़ता है कि उसकी उस शोभा के मूल में प्रयत्नों की विपुलता है या प्रकृति-देवी का प्रेम-प्रसाद! यह एक सुलभ कसौटी है,

जिससे किसी भी कवि की कृति की स्वाभाविकता का सफल परीक्षण हो सकता है! 'प्रेमी' की इस कृति में अतिशयोक्ति, सूक्ति और काव्य-चमत्कार की एकाध झलक पाते ही भडक उठनेवाले सहृदयों को चाहिए कि वे क्षण भर अपने असहिष्णु हृदय को इसके कार्य-कारण सम्बन्ध पर विचार कर लेने दें। अन्यथा, प्रकृति के रजत-निर्झर की चमक से एकदम भडक कर उसकी स्वाभाविकता पर, खान खोदकर निकाली जाने वाली चाँदी के आरोप का भार रख देनेवाले उतावले समालोचकों को समझाना कम से कम एक कवि की शक्ति के बाहर हो जायगा। सौभाग्यवश जिन्हें प्रेमी के सरल हृदय से कुछ भी परिचय प्राप्त है, वे खूब जानते हैं कि उनके सामान्य भाव-प्रवाह में भी कितना सौन्दर्य होता है! फिर यदि कष्ट-साध्य, श्रम से प्राप्त, "सूक्ति"—चाँदी की चमक अनायास और अनाहूत ही उनके प्रकृत काव्य-निर्झर मे आ जाती है, तो वे क्या करें? प्यार की गंगा और चोट की यमुना मे यदि दृश्य या अदृश्य रूप मे "सूक्ति" की सरस्वती भी आकर मिल जाती है तो इसमें हृदय के संगम का क्या दोष?

इस नवीन युग मे, कई सज्जन, ऐसा प्रतीत होता है मानों, कविता को प्रकांड विद्वत्ता, निग्रह अथवा दर्शनशास्त्र के जटिल रहस्यों का ही प्रतिरूप समझ बैठे हैं। उनमें से कुछ तो कठिन-कठिन शब्दों के अजस्र आडम्बर को ही कविता मानते हैं, कुछ स्वयं स्वाभाविक एव मौलिक हृदयोद्गारों से सरस साहित्य का भण्डार भरने मे असमर्थ होते

हुए भी "अनुभूति ! अनुभूति !" की प्रबल पुकार मचाकर ही सरल साहित्यिकों पर रौब जमाना चाहते है और कुछ सुन्दर-सुन्दर शब्दों की अनोखी एवं आकर्षक योजना मे छिपी हुई निरर्थकता को ही उच्च कोटि की आध्यात्मिक पहेली के रूप मे उपस्थित करके कवि कहलाने की इच्छा रखते है। सौभाग्य या दुर्भाग्यवश बेचारे "प्रेमी" इनमे से किसी भी श्रेणी मे नही आते। उनका भोला हृदय केवल वेदना की पूँजी लेकर ही कविता की इस ऊँची हाट मे आ निकला है। वे उपर्युक्त श्रम-साध्य उपायो से "महामहिम" कहलाने की क्षमता नही रखते। प्राकृतिक प्रतिभा की प्रेरणा होते ही वे ऊँचे-ऊँचे शब्दों को चुन-चुनकर जड़ना भूल जाते हैं, आत्म-सयम के नाम पर भावों की चञ्चल मंदाकिनी का सवरण नही कर पाते और निष्कपट हृदय की पावन पुलक की स्पष्टता को बरबस रहस्य बनाने की चिन्ता भी उनके वश की बात नही रह जाती। उनका अनुभव है, कि जिस प्रकार प्रयत्न करके कोई कुछ लिखने में यशस्वी नहीं हो सकता, उसी प्रकार वलात् कोई कुछ न लिखने मे भी सफलता नही पा सकता। उनके लिए वे कहते है, कि लिखने की हार्दिक इच्छा न होने पर जैसे लिखना नितान्त अशक्य है, वैसे ही प्रतिभा की प्रबल स्फूर्ति होने पर न लिखना भी अत्यन्त असम्भव है।

जब मैं "प्रेमी" की कविता पढता हूँ, तो मुझे तत्क्षण प्रतीत होता है, मानो कोई पागल झरना बडे वेग से वहता जा रहा है। वह अपने करुण-प्रवाह मे कभी-कभी अपना इतिहास भी भूल जाता है और कभी-

कभी अपना भविष्य भी। लोगों के हृदय पर बरबस जादू डालने के लिए अपने सरल स्वर में अधिक गम्भीरता, अधिक दार्शनिकता, अधिक रहस्य, अधिक शोभा, अधिक मधु, अधिक मद और अधिक स्थिरता लाने की चिन्ता में मुँह लटका कर बैठ रहने का उसे जरा भी अभ्यास नहीं है। वह केवल बहना जानता है। ऊँची-नीची, टेढ़ी-सीधी, मोटी-पतली, जैसी भी हो उसकी धारा "कल-कल-छल-छल" करती हुई चलती ही जाती है। पास के पेड, पक्षी, पर्वत, बालू और नदी-नाले ही नहीं, उसे आसपास ही बहते हुए सागर तक का भी ध्यान नहीं रहता, जिसमें उनके जीवन का लय होने वाला है। दर्शक और समालोचक उसे देखा करें, वह उन्हे नहीं देखती। चलती ही जाती है—बस चलती ही जाती है। बहुतों को उसमें आनन्द नहीं आता। सच पूछो तो, ज्ञान-गम्भीर-मुद्रा के आकर्षण को उसमें कुछ है भी नहीं। पर कई पगले ऐसे भी हैं जो उसके चपल वेदना-प्रवाह में जीवन का सार पा जाते हैं। उसकी छोटी-छोटी चञ्चल लहरें उनके हृदय में गुद-गुदी मचा देती है। वे यह सोचना ही भूल जाते हैं कि करुणा की उस सुकुमार चञ्चलता के प्रवाह के नीचे खूब गहरी डुबकी लगाकर बाज़ार में बेच सकने योग्य लावण्य या मोती निकाल सकेंगे, या नहीं। न जाने क्यों इस संसार में, भूले से ही सही, विधाता ने कुछ ऐसी भी आँखों की सृष्टि कर डाली है, जिन्हे गम्भीर-प्रशान्त महा-समुद्र के गर्भ के कठोर मोती गिनने की अपेक्षा चपल निर्झर की सरल

लहरें गिनने ही में अधिक आनन्द आता है। उनके लिए तो करुणा ही सबसे बड़ी निधि है—सरलता ही सबसे बड़ा सुख—वेदना ही सब से बड़ा आनन्द!

संसार की अच्छी से अच्छी कविता का आनन्द भी "क्या" की संकुचित कसौटी से उतना अधिक नहीं लिया जा सकता, जितना कि "कैसे" की उदार समीक्षा से। पहली के क्षेत्र मे मतभेदों का इतना कोलाहल मचा हुआ है कि उसमें कवि का कोमल स्वर न जाने कहाँ छिप जाता है। वास्तव मे हमारी साहित्यिक असहिष्णुता यहाँ तक चढ़ गई है कि हम किसी को अपनी नई चीज़ लेकर इस ओर आते देखते ही बिना समझे-बूझे भड़क उठते हैं, किन्तु दूसरों का सहारा लेकर ही ईसा का दीवाना तुलसी के सर्वस्व राम पर लट्टू हो सकता है; मुहम्मद का शैदा मीरा के गिरिधर-नागर मे तल्लीन हो सकता है। 'प्रेमी' की कविता में भी बहुत से रसिक उन्हें अपनी वेदना मे इतना तन्मय पाएँगे कि वे यह जानना ही भूल जाएँगे कि वे क्या कह रहे हैं।

इस असीम विश्व मे प्रत्येक हृदय की व्यथा का कारण भिन्न हो सकता है, उसका स्वरूप भी भिन्न हो सकता है, पर उसकी अनुभूति का स्पंदन प्रत्येक अन्तर्-तम में और अभिव्यक्ति का स्वर प्रत्येक उद्गार में समान ही पाया जाता है। अतः यदि हम भी प्रेमी के तुतले उद्गारो मे विश्व की वेदना, रसिकता तथा सहानुभूति का क्षण भर किंचित्

समन्वय कर बैठें, तो क्या कुछ समुचित न होगा ? अस्तु ! इस प्रकार, अवकाशाभाववश अन्त के आनन्द की आकांक्षा आरम्भ में ही कर उठनेवाले कोरे कामकाजी पाठकों की उतावली को असह्य प्रतीक्षा का, समालोचकों को सुअवसर का, प्रेमियों को मीठी पीडा का, कोमल हृदयवालों को करुणा का, भावुकों को भावावेश का, मर्मज्ञों को समाधि का, साधकों को आशा और निराशा की आँखमिचौनी का, सहृदयों को गुदगुदी का, कवियों को सहानुभूति का, घायलों को चोट का, अरसिकों को अटपटी उलझन का, भूले भटकों को स्मृति का, पागलों को उन्माद का, मतवालों को मद का और प्यासों को अतृप्ति का अनिर्वचनीय आनन्द अनुभव कराते-कराते दिन मे सौ बार हँसने और हज़ार बार रोनेवाली अन्तरतम की छिपी हुई कसकों के गोपन की गाँठ खोलते-खोलते, 'प्रेमी' का यह भोला प्रलाप "कई जन्म पूरे हों फिर भी रहें अधूरे ही उच्छ्वास"—अपनी इस अद्भुत अभिलाषा को अधूरी ही छोड कर सहसा समाप्त हो जाता है। बस !

कवि की कामना है कि विश्व की विविध व्यथाओं से व्यथित विभिन्न व्यक्तियों से अभिन्न आकर्षण से, 'प्रेमी' की पीडा का एक-एक कण महाप्रसाद की तरह बँट जाय—तडप कर लुट जाय।

मकरन्द-मन्दिर,
मुरार, ग्वालियर
होलिकादाह १९८९

—जगन्नाथप्रसाद "मिलिन्द"

आँखों में

संकेत

पीछे इस दुखिया जीवन के
ये पागल पन्ने खोलो,
पहले कलुषित हृदय,
वेदना के निर्मल जल मे धोलो।

कितनी वार मदन, अवनी मे,
अपनी मादकता भरता!
कितनी वार कोकिला का स्वर,
हृदय सुहृद्-जन का हरता!

स्वर्ण-जाल ऊषा का कितनी—
वार फैल होता अवसान!
पर मेरे जीवन की सन्ध्या—
से न हुआ फिर कभी विहान!

आँखों मे प्रिय की आँखे हैं,
आँखों में प्रिय की पहचान।
आँखों मे प्रिय की लाली है,
उस लाली मे प्रिय का मान।

आँखों मे मद का प्याला है,
प्याले मे मतवालापन!
आँखो मे मद का उतार है,
उस उतार मे रूखापन!

सुख के स्वप्नों का आँखों से—
उतर गया सब नशा अजान!
नाना नाम-रूप रख, आगे—
घूमा करती व्यथा महान!

कितनी मादक सन्ध्याओं—पर
ये उदास आँखें डाली।
कितनी तत्परता से मैंने—
की इस दुख की रखवाली!

किस आतुरता से है मैंने
आकुलता को अपनाया!
स्वयं सजाई अपने जग पर—
अमर वेदना की छाया!

छिपा रखा था अन्तर मे ही
अपनी आहों का इतिहास,
तो भी बरबस निकल पड़े हैं
आज हृदय से ये उच्छ्वास।

आँखों में

आँखों में क्या-क्या है देखें,

आँखों से आँखोंवाले।

इन आँखों ने बना दिए हैं—

लाखों अन्धे, मतवाले।

इन पापिन आँखों ने तुमको—

यदि न कभी देखा होता।

तो, मेरी फूटी किस्मत में—

कुछ सुख का लेखा होता।

विष भी है, पीयूष वही है—

प्रेम, अरे, यह क्या माया?

अखिल विश्व की व्यथा!

तुम्हें क्या केवल यह प्रेमी, भाया?

अन्तरिक्ष से, जल-थल से, क्यों—
सारा प्रेम समेट-समेट—
इस प्रेमी ने तुझ अभिमानी-
प्रियतम को कर डाला भेट ?

आँखों मे छाया है मेरी,
किस भावी का कटु उपहास ?
अन्तस्तल की प्रति-ध्वनि मे है—
किस निष्ठुर स्वर का आभास ?

आँखों मे पहली झाँकी है,
आँखों मे पिछला सुख है।
आँखों मे अबकी झाँकी है,
आँखों मे अगला दुख है।

कितने घन के टुकड़े आकर,
झर-झर बरस चले जाते !
इस प्रेमी की भग्न कुटी की—
अग्नि कभी न बुझा पाते।

आँखों में दीपक की लौ है,

आँखों मे है विमल प्रकाश!

आँखों मे पतग का जलना,

आँखों मे है ज्योति-विनाश!!

आँखों का कलियों सा खिलना,

आँखों पर अलियों का प्यार!

आँखों मे भ्रमरों का क्रन्दन,

आँखों मे फिर सूनी डार!!

उपवन मे कितनी कलिकाएँ,

प्रतिदिन मल डाली जाती!

कितनी विपदाएँ अम्बर से—

अवनी पर उतरी आतीं!!

आते आते जो किरणे घर—

घर मे स्वर्ण लुटाती है।

जाते-जाते अन्धकार का,

काला पट बुन जाती है!

आँखों में

आँखों मे आँखों की पुतली,
पुतली मे पुतलीवाला।
आँखों मे रूठी आँखे है,
आँखों मे जीवन काला!

आँखों मे उन्माद हृदय का,
आँखों मे बिगडी घडियाँ।
आँखों मे स्मृति के कुसुमों की—
रूखी-सूखी पंखडियाँ!

जर्जर अन्तर को क्या निष्ठुर,
स्मृति फिर से सीने देगी?
वह मीठी अतीति क्या मुझ को,
अब सुख से जीने देगी?

नित्य तुम्हारी निष्ठुरता को
याद करूँगा, रोऊँगा!
स्मृति के अश्रु-सिन्धु मे अपनी,

आँखों में

भय है, कही न दुख की वर्षा
गीला कर दे सुख का हास!
मेघ न बन जाएँ जगती की—
आँखों मे मेरे उच्छ्वास!

सौ-सौ छिद्रों से गाता है—
हृदय सदा करुणा के गान!
कही प्रतिध्वनि करे न कम्पित,
किसी कुसुम के कोमल प्राण!

आँखो मे पिछली अतृप्ति है,
आँखों मे प्रियतम का प्यार!
त्याग, वियोग, विलाप, पिपासा,
प्राणो की आकुल मनुहार।

आँखों में मै दीप छिपा कर,
तुम्हे खोजने जाता हूँ।
कही फूँककर बुझा न दो तुम!
मन-ही-मन भय खाता हूँ!

आँखों में मेरा शुभ शशि है,
आँखों मे ज्योत्स्ना-में स्नान।
आँखों में यह चन्द्र-कटारी,
आँखों मे अंधेर महान!

सारी रात व्यथा, मेरी ही
तारों मे चमचम करती!
होते ही प्रभात, अन्तर के—
आँसू फूलों मे भरती!

छिपी हुई थी हास—ज्योति मे—
मेरी ही करुणा काली।
हरे रंग से ढकी हुई है,
जैसे मेंहदी मे लाली!

आँखों मे है स्वाति-बूँद औ'
आँखों मे ही शशि की कोर।
आँखों मे ही चातक की रट,
आँखों मे ही असुध चकोर!

आँखों में है जीवन-नौका,

आँखों में उसकी पतवार!

आँखों में है चतुर खिवैया,

आँखों में है पारावार!

आँखों मे टूटी नौका है,

आँखो मे छूटी पतवार!

आँखों मे रूठा माझी है,

आँखों मे तूफान अपार!!

आँखों मे है सिन्धु-किनारा,

आँखो मे है सुन्दर द्वीप!

आँखों मे सागर का तल है,

आँखों मे है छूँछे सीप!!

मेरा अभ्युत्थान छिपाए—

था सुख के झूलों का अन्त!

जैसे छिपा हुआ रहता है—

खिलने मे फूलों का अन्त!!

आँखों मे शुभ रत्न-राशि है,
आँखों मे है जिनका लोभ।
आँखों मे प्रियतम की माया,
माया की छाया मे क्षोभ !!

आँखों मे मणियों की माला,
आँखों मे आँसू का हार !
आँखों की आँखों मे तृष्णा,
आँखों मे है नदी अपार !!

मछली मे सागर तिरता है,
सीपी मे है रत्नाकर !
आँखों के आँगन मे बस्ती,
कोनों मे सूने निर्झर !!

आँखों मे मेरी शोभा है,
आँखों मे मेरा अभिसार।
आँखों मे है रुदन हृदय का,
आँखों में बिखरा शृङ्गार !

पर, क्या करुणा के गानों का,
क्रम चलता रह सकता है?
कब तक कोई जीता दुख के—
अंचल में रह सकता है?

करुणा के इतने बोझे को
सह न सकेंगे कोमल प्राण।
फट जावेगा अन्तस्तल, रह—
जावेगा आधा ही गान!

आँखों में करुणा का सागर,
आँखों में विषाद का ज्वार।
किसमे मिलनोन्मुख लहरों मे—
मचल रहा है हाहाकार?

कितना करुण निराशा—निशिमे—
विफल विसर्जन जीवन का!
क्या न कभी यौवन आएगा—
मेरे उजड़े उपवन का?

इतने दिन की बेचैनी का—
पाया क्या प्यारा परिणाम?
पल भर को भी क्या न भरेगा—
कभी हृदय का सूना धाम ?

मेरा जीवन सना हुआ है—
असफलता मुसकाती से।
समझ भाग्य का लेख, लगालूँ—
इस अभाव को छाती से।

आशा की वे तिरछी किरणे—
अब न करेंगी उर मे घाव।
अर्पित है अपूर्णता के—
चरणों पर आज पूर्णता-भाव !!

"वह कोई अपना सपना था"—
कह कर जी बहला लूँगा।
शून्य गगन के सूनेपन मे,
सूना प्रियतम पा लूँगा।

क्या उच्छ्वास, अश्रु, आकुलता—
भुला सकेगी वह घटना?
क्या काले जीवन-पट से है—
कभी व्यथा-लेखा हटना?

हृदय थामने से क्या थमता—
कभी कलेजे का तूफान?
मन समझाने से क्या होगा?
समझे कैसे पीड़ित प्राण?

इन करुणा की रजत-प्यालियों—
को ढुलकाया लाखो वार!
पर, न कभी खाली हो पाई!
कितने इनमे पारावार!!

आँखो मे है करुण-कथा के—
अमर आँसुओ की भाषा!
कौन डूबकर सुनने आवे—
इन आँखों की अभिलाषा?

समझ लिया है भली भाँति से,
बहरा है सारा संसार !
कौन सुनेगा इस प्रेमी के—
दलित हृदय की करुण-पुकार ?

दानी जग निर्दयता-निधि से—
कहीं न यह झोली भर जाय !
कहीं न उर की पीर जगत् की—
दूषित आँखों से मर जाय !!

कहीं न नीरस जग में फँसकर—
अन्तर-तम की करुण-पुकार—
सब का खेल बने बच्चों-सा,—
खेले उस से सब संसार !

मेरा दुख हत्यारे जग का,—
बन जाए न खिलौना-सा !
इस भय से उर की कुंजों में,
छिपा रखा मृग-छौना-सा !

आँखों मे है करुण-पुकारें,
आँखों में है करुण-कथा !
आँखों मे उनकी असफलता,
आँखों मे है मरण-व्यथा !

आँखों मे उच्छ्वास, अश्रु हैं,
आँखो मे नीरव भाषा !
आँखों मे प्रियतम की हठ है,
आँखों मे रोती आशा !

भूले-भटके तारे-से तुम,
चमक उठे मम सूने मे !
ओहो ! कितनी मादकता थी—
उन किरणों के छूने मे !!

भर अतृप्ति मेरे मानस मे,
हुए न जाने कहाँ विलीन ?
सतत प्रतीक्षा में रहता हूँ,
अपलक आँखों से तल्लीन !

धीरे-धीरे भर जाता है,
नक्षत्रों से नभ सारा।
किन्तु, नहीं दिखता है वह,
सब से न्यारा प्यारा तारा!

नयनों का तप—विफल प्रतीक्षा!
यह बुझता दीपक अपना!!
निष्ठुरता की दया!
सरस भावी का वह अस्थिर सपना!!

सूने स्वप्नों के आँचल मे,
क्यों पालूँ प्राणों की प्यास?
क्यों अभिलाषा को तरसाऊँ,
आशा का कर-कर उपहास?

आहों को बन्दी कर रक्खूँ,
नयनों मे आँसू घेरूँ।
यौवन की अभिलाषाओं पर—
पीडा का पानी फेरूँ।

अमर वेदना अन्तर तम मे,

आँखों मे अधसूखापन।

रूखी हँसी खेलती मुख पर,

विरह-व्यथित है भीतर मन!

न तो पूछता ही है कोई,

न मैं नताता अपनी प्यास!

सब से ठोकर खाकर कैसे,

करूँ किसी का मै विश्वास?

समझ सकेगा क्या कोई भी,

अन्तस्तल की मूक पुकार?

व्यर्थ मिलाता हूँ रो-रोकर,

मिट्टी में मोती लाचार।

आँखों मे निर्धन की झोली,

आँखों मे वैभव-भडार!

आँखों मे है भेंट किसी की!

और किसी का क्रूर प्रहार!!

प्रेमी की निर्धन झोली में—
एक प्रेम ही तो था धन!
वह चाहे कोई ले लेता!
किया तुम्हें ही वह अर्पण!!

मेरी आशाओं की हत्या—
कर डाली तुमने, हा हंत!
किसे पता था होगा मेरे—
मधुर स्वप्न का ऐसा अन्त!

अपने स्वप्नों के चित्रों पर—
फेर निराशा की कूची,
भावी के अंचल मे लिखता—
हूँ अपने दुख की सूची!

जग से आँख चुरा गाता हूँ—
घायल अन्तस्तल के राग।
विगत विभव की छाया में भी—
लगा चुका चुपके से आग!!

जीवन की असफलता का ही—
एक सफल अभिनय मैं हूँ !
परिचय-हीन विश्व की मीठी—
पीडा का परिचय मैं हूँ !!

किसी विजन वन के प्रान्तर मे—
सूने गौरव की हूँ राह !
बडी-बडी अभिलाषाओं की—
एक सिसकती-सी हूँ आह !!

वैभव की निर्धनता हूँ मैं,
निर्धनता का वैभव हूँ !
अपयश का मैं गौरव हूँ !
गौरव का भोला शैशव हूँ,

तिरस्कार ही के काले—
अंचल में पला हुआ प्राणी—
सुख से सहता हूँ अपमानों—
की मैं सारी मनमानी !

दुख से छके हुए प्राणों का
थका हुआ कोमल तन हूँ।
करुणा के चरणों पर अपना
चढ़ा चुका यह जीवन हूँ।

नयनों की नौकाओं मे भर
हृदय—सिधु से चुन मोती
मेरी पीडा अपने धन पर
इतराती—गर्वित होती !

आँखों में है हाट हृदय की
जिसमे है मेरी दूकान।
देकर अमर प्रेम, अभिलाषा,
पाना अन्तर्-पीर महान।

शीतल ज्वाला, मीठी पीडा,
अमर वेदना, हाहाकार !
इस छोटी सी झोली मे—
भर रक्खे कितने दुख-संसार !!

आँखों मे मेरी मद-प्याली,
प्याली से सकुचाती चाह!
कितना मादक पी जाने पर—
प्याली ठुकराना है! आह!!

मैंने अपना हृदय सुमन-सा
चढ़ा दिया तव चरणों पर!
फेक दिया उसको अब तुमने—
वासे फूलों-सा पथ पर!!

अरे, सुधा के स्रोत, कभी मैं—
तेरे तट पर था आया!
अन्तस्तल तक जाकर भी,
उर प्यासा-का-प्यासा पाया!!

जब मानिक-मदिरा की प्याली—
पर था प्रेमी का अधिकार,
बिना पिए आँखें चढ़ जाती!
पीता कैसे, प्राणाधार!!

हाय, हृदय-कलिका क्या मेरी—
मुरझाने को ही फूली !
कोई कर्कश कर से मल दे—
इसी लिए मद मे भूली !

आँखों में वह स्वर्ग-सृष्टि है,
आँखों में मधु का भंडार !
आँखों में हैं फेर दिनों के !
आँखों मे सूना संसार !

ऊषा की लाली निरखूँ,
या, लखूँ प्रतीक्षा-पथ खाली !
संध्या की बुझती आभा,
या, आशा की झुकती डाली !

सुमन चुनूँ उपवन के, या,
मैं गूँथूँ आँसू की माला !
किसी शान्त छाया मे बैठूँ,
या, पालूँ कोई ज्वाला !

. . . .

आँखों मे अंकित कर रक्खूँ—
क्या जगती का हास-विलास!
या, आँसू से लिख डालूँ निज—
दुखिया-जीवन का इतिहास!

कोयल की तानों पर मोहित—
हो, अपनी तानें भूलूँ!
या, अपनी सूनी कुटिया मे—
इस संचित दुख मे झूलूँ!

भोगों का मैं भक्त बनूँ, या,
झुकूँ त्याग के चरणों पर!
वार दिए सौ-सौ सुख-सागर—
इन आँखों के झरनों पर!

मेरी सुधि के प्रथम तार से
झंकृत हुआ करुण-सगीत!
फिर कैसे भर लेता प्रेमी—
हास, विलास, विभव से गीत?

दुख की दीवारों का वंदी—
निरख सका न सुखी जीवन !
सुख के मादक स्वप्नों तक से—
बनी रही मेरी अनबन !

आँखों मे प्रियतम की छाया,
छाया मे वह शान्ति—निवास !
फिर, उस छाया से निर्व्वासन !
यह क्या ! करुणा का उपहास !!

देकर पुनः छीन ली तुमने—
अपनी दिव्य दया की भीख !
दिए दान को फिर हथियाना !
किसने दी तुमको यह सीख !!

आँखों मे सौन्दर्य्य सृष्टि का,
आँखों मे उसका शुचि सार !
आँखों मे बन्दी अभिलाषा,
आँखों मे संसार असार !

आँखों मे पहली आँखें है,
पिछली आँखे आँखों मे !
रोती हैं, बोती है मोती—
पहली आँखे आँखों मे !!

आँखों मे आनन्द पुराना,
आँखों मे वह उमँग, उफान !
आँखों मे है दुख का डेरा,
आँखों में उर का तूफान !!

आँखों मे वह मधुर मिलन की—
सुन्दर मतवाली लाली !
आँखों मे यह विरह-निशा है—
मतवाली, काली, खाली !!

आँखों मे घूमा करता है—
निशि दिन एक यही सपना—
"बना पराया सा बैठा है—
कहीं रूठ मेरा अपना" !

वसुधा की सारी करुणा को—
वीणा मे भर कर एकांत,—
प्रिय के कानों तक पहुँचाकर,
कितनी बार हुआ उद्भ्रान्त !

आँखों में हैं घाव हृदय के,
है उपचार तुम्हारे पास !
पर तुम उनमे चुभा रहे हो
नयनों का निष्ठुर उपहास !

आँखों मे हैं दिल के टुकड़े,
टुकडों मे आकुल अरमान !
अरमानों मे उर की तडपन,
तडपन मे तूफ़ान अजान !

भोला-भाला हृदय किसी का—
होता है कितना निष्ठुर !
तीक्ष्ण कटारी सा चुभता है—
कभी हृदय मे शशि सुन्दर !

कोमल कमलों से, मधु से मृदु,
शिशु से शुचि, सुन्दर, भोले—
इतने निष्ठुर! किसी हृदय के—
भाव भला किसने तोले?

किसने देखा पार क्षितिज के—
अन्धकार या स्वर्ण-प्रभात?
किसी हृदय के अन्तरतम का
कब रहस्य होता है ज्ञात?

सब ही अपना धुँधला दीपक—
लेकर मन्दिर मे आए!
किन्तु, तुम्हारे सत्य रूप को—
क्या पहचान कभी पाए?

किस 'उजियारे' से देखूँ मैं—
अपनी आँखों का तारा?
है प्रसिद्ध यह बात जगत मे—
'दीप तले ही अँधियारा!'

आँखों में वह मेरा वैभव,

आँखों में यह सूनी रात!

लाखों के न रोकते रुकती—

आँखों की दूनी बरसात!

आँखों में है विकल रागिनी,

आँखों में है मूक पुकार!

आँखों में कितनी पीडा है,

कितना उन में हाहाकार!

पंकज के उदास मुख को लख,

पुनः हँसाता है दिनकर!

मलिन कुमुदिनी फिर मुसकाती,

हँस उठता है जब निशिकर!!

उपवन की सूनी डालों पर—

मँडराता है जब मधुकर,

खाकर तरस वसन्त दयामय—

लाता प्यालों में मधु भर!

रात-रात भर रो-रो कर भर देता
नभ अवनी का थाल!
उषा, सुनहले अँचल से, आ,
पोंछ-पोंछ देती है गाल!

किन्तु, सदा व्याकुलता, पीडा,
मधुकर सी पीछे मेरे—
किस मधु की आशा से निशिदिन,
रहती है मुझको घेरे!

आँखो मे पीडा का चश्मा,
सब मे पीडा का ही रग!
शीतलता के उर मे ज्वाला,
शशि का विषधर का-सा ढग!

हँसने मे करुणा का सोता,
खिलने मे मुरझाना है!
बिगडी घडियों की आँखों मे—
सुख का दुख बन जाना है!

कितने पागल प्रेमी सूने—
में छेड़ा करते है तान!
कितनों की टूटी वंशी मे
विह्वल हैं करुणा के गान!

जग के कण-कण से बहता है—
कोई करुणा का संगीत!
कुछ ऐसा लगता है मानों—
जग ही है करुणा का गीत!

सब ही सौख्य-नीड से उडकर
होते व्यथा-गगन मे लीन!
सब का अन्तस्तल दिखता है—
किसी वेदना में तल्लीन।

मेरे मन की सब दुर्बलता—
जब आँखों मे घिरती है,
उथल-पुथल मच जाती उर मे,
जाने क्या-क्या करती है!

आँखों मे घन, घन में विजली,
चमक रही विजली मे पीर !
दुख की वर्षा सहते सहते,
प्रेम-गली मे, हुआ अधीर !

आँखों मे ही प्रेम-गली है,
किन्तु, गली मे तीखे शूल !
आँखों में पहली आँखों के—
प्रणय-कुज के कोमल फूल !

आँखों मे पीड़ा का दर्पण,
विश्व-व्यथा की उसमें छाप ।
आँखों मे भर रक्खा मैंने—
जग का पाप, ताप, अभिशाप !

आँखों मे दुर्दिन की भाषा—
कहती भग्न हृदय की पीर !
हृदय दुखेगा यदि प्रेमी का—
क्यों न वहेगा उन से नीर !

नीर बहाते है पत्थर के
पर्व्वत काले विकटाकार
मेरा कोमल अन्तस्तल फिर
क्यों न बहावे आँसू-धार ?

आँखें क्या छोड़ेंगी करना—
अपनी करुणा का शृंगार !
हृदय बहा सरिता-सा कवि का—
रोक सकेगा क्या संसार !

आँखों मे करुणा का सोता,
आँखों मे प्रियतम की याद !
आँखों मे मतवाली पीड़ा—
का मतवालापन, उन्माद !

आँखों मे करुणा का कवि है,
बरसाता पल-पल पर छन्द,
जिसकी अमर स्वर्ण-लहरी है—
विचर रही जग मे स्वच्छन्द !

३२ आँखों में

आँखों मे है सुधा-सरोवर,
आँखों मे विष का सागर !
जाने क्या-क्या भर लाई है—
ये छोटी-छोटी गागर !

आँखों मे स्मृतियाँ अटकी हैं—
लाखों स्थिर ध्रुव तारों-सी !
आँखों में ध्वनियाँ आती है—
वीणा की झनकारों-सी !

आज पूछती प्रियतम की स्मृति—
"किसका, किस पर, क्या अधिकार !"
हाय, हृदय भोला-सा मेरा—
पाए वाणी कहाँ उधार ?

मत पूछो मुझ से कोई—
क्या प्रियतम पर मेरा अधिकार !
जाकर सुनो पूर्णिमा के दिन—
सागर के चंचल उद्‌गार !

क्या अधिकार चकोर बिचारे—
का सुन्दर शशि के ऊपर !
क्यों किरणे आकर करती हैं
नलिनी का चुम्बन भू पर !

जो अधिकार पतंग दीन को
दीपक पर जल मरने का,
है अधिकार वही प्रेमी को
प्यार तुम्हें ही करने का !

आँखों मे यौवन का उपवन,
आँखों में उसका माली !
आँखों मे खिलना, फलना है,
आँखों मे उपवन खाली !

आँखों मे सागर का बढ़ना,
लहरों पर सीपी तिरना।
सीपी मे मोती का बनना,
फिर मिट्टी मे जा गिरना !

आँखों मे अतीत की आँखें,
आँखों मे भावी चितवन!
वर्तमान भी यही खेलता—
है आँखों में आँसू बन!

आँखो मे है आँख-मिचौनी,
पीडा की-सुख की भोली!
कोई छिपे-छिपे भर देता
दुख से प्रेमी की झोली!

आँखों में ही मौन निमन्त्रण,
आँखो में नीरव मनुहार!
आँखो मे प्रियतम का आना,
और पहनना आँसू-हार!

तुम से—मिलन-कल्पना ने ही
मेरी नस-नस को कीला!
आँखों से आँसू झर-झर कर
रखते घावों को गीला!

आँखों से देखो, आँखों मे—
ये दो खारे झरने हैं!
तुम्ही सोच लो, कभी हृदय के—
हरे घाव क्या भरने है?

आँखों मे प्यारे दर्शन हैं,
अंकित है पहली तस्वीर!
भले मिटाओ, पर न मिटेगी—
यह पत्थर की अमिट लकीर!

निष्ठुरता की रगड लगाकर—
व्यर्थ मिटाने का है यत्न!
जितनी रगडो, उज्ज्वल होगी!
हाँ, चलने दो यही प्रयत्न!

तोड-तोड कर शत-शत बन्धन,
लाँघ-लाँघ कर लाखों कोट!
मेरा प्यार सदा तव चरणों—
पर बरबस जावेगा लोट!

ज्यों-ज्यों अधिक-अधिक मचलेगा—
पीड़ित प्राणों का विद्रोह,
त्यों-त्यों अधिक-अधिक उमड़ेगा
प्रियतम के प्रति पावन मोह!

भागे, क्या भागोगे, निष्ठुर,
पुतली के बन्दी मेरे,
आँखों मे ताला देकर मै,
रक्खूँगा तुम को घेरे!

अलि, ये कमल नही ऐसे है,
रस लेकर चल दो चुपचाप!
बन्दी रह, लूटो भी तो कुछ—
साथ-साथ मेरे सन्ताप!

और न समझो यह भी मन में—
"होगा, निश्चय, कभी विहान!
हम चल देंगे," पर, ऐ प्यारे,
आँखों की निशि कल्प-समान!

मेरे आँसू के धागों से,
पानी की ज़ंजीरों से,
काली पुतली के पिंजरे में,
बन्दी हो तुम कीरों से!

अन्तर्-पट पर अंकित है जो,
हो कैसे आँखों की ओट?
तुम्हें कैद रखने को काफी है—
मेरी आँखों का कोट!

बहुत झिझकते थे तुम मुझ से—
सेवा करवाने मे नाथ!
आँखों मे ही अब तो तुम हो!
सब कुछ है मेरे ही हाथ!

आँखों में निर्म्मल जल भी है,
मुक्ता-मणि औ, हृदय-सुमन,
करुणा की कल-कंठी वीणा,
सब कुछ है, ऐ जीवन-धन!

जो कुछ भी है, वह अक्षय है,
सब पर है मेरा अधिकार!
नित्य तुम्हें पूजूँगा जी भर!
कैसी बीती प्राणाधार!!

पर, यह व्यर्थ सान्त्वना मन की,
आँखों मे है, तो क्या है?
हाँ, प्रत्यक्ष तुम्हें पाऊँ, तो,
समझूँ तुम को पाया है।

आँखों में अंकित है सब कुछ—
वे अपनी बीती बातें!
निकल गए, हा, कितने मेरे—
मंगल दिन, मादक रातें!

पापी जीवन की घड़ियों मे
एक सहारा रोना है!
टूटे-फूटे मुक्ताओं के—
जल से पलकें धोना है!

रोना मेरा सुख, दुख, आशा,
लिप्सा, उत्कंठा, उन्माद,
स्वर्ग, नरक, कामना, वासना,
धर्म और दर्शन के वाद!

आँखों के बुझते प्रकाश से
सुलगी ज्वाला अन्तर मे।
किस दुर्दिन में आग लगी है—
घर के दीपक से घर मे!

रखूँ हिमालय-शैल हृदय पर,
प्रियतम, पीर दबाने को।
भर लूँ सागर को अन्तर मे—
उर की आग बुझाने को!

उलट जायगा शैल हिमालय,
आग लगेगी सागर मे।
व्यर्थ यत्न है, अधिक-अधिक—
धधकेगी ज्वाला अन्तर में!

आँखों में अंकित होगी, प्रिय,

प्रेमी की हँसती सूरत !

देखो, क्या श्रृङ्गार किए है—

अब मेरी मुरझी मूरत !

आँखों में, ऐ आँखों वाले,

भर लो प्रेमी की तसवीर।

फिर, तुम भले चले ही जाना,

ढलका पलकों से कुछ नीर !

सहा न जाता सतत तरसना,—

नाथ, तुम्हारे प्रेमी से !

क्या अतृप्ति का पागलपन है,

पूछो तो मेरे जी से !

तुम से मिलकर तो, ऐ प्यारे,

दूनी पीड़ा बढ़ जाती !

हाँ, यदि, तुम में मिल पाता,

तो, यह व्याकुलता मिट पाती !

तुम औ, मैं जब तक दो-दो है,

तब तक बुझती प्यास नही !

दुखिया के "एकांत" प्रेम को—

"दो" पर है विश्वास नहीं !

तुम में मुझे मिला लो, या,

मुझ में ही तुम, आ, मिल जाओ,

खुला हुआ है द्वार हृदय का,

ऐ प्रियतम, आओ, आओ !

किन्तु, नहीं ! क्या कभी दुखी की—

कुटिया मे सुख है आता ?

धीरे-धीरे जोड चुका उर—

पीडा से अक्षय नाता !

कूक-कूक उठती है कोयल-सी—

प्रियतम की मादक याद !

गूँज-गूँज उठता है मधुकर—

सा मेरा पिछला उन्माद !

आँखों में

चमक-चमक पड़ते बीते दिन

तारों-से अन्तर्-पुर में।

जल-जल उठता है, आए दिन,

ज्वालामुखी व्यथित उर मे।

उमड़-उमड़ आँखें बह चलती—

हैं बरसाती नाले-सी।

जीवन के सब ओर वेदना—

छा जाती है जाले-सी।

प्रेमी के प्यासे प्राणों को, देकर

पीडा की भिक्षा—

रूठ गए मुँह फेर, हमारे—

दाता की जैसी इच्छा!

यदि इस पीडा मे सुख बनकर

आँखो मे बस जाते तुम—

जीवन-व्यापी करुण—गान मे

मधुर रागिनी गाते तुम,—

तो इस व्यथित अभागे उर मे
एक शान्त-रेखा होती—
तो ये मेरे असफल आँसू
बन जाते मानिक-मोती!

किन्तु न आशा के आँचल मे
यह सुन्दर सपना पल जाय!
कोमल निष्ठुरता न तुम्हारी
मेरी आहों में जल जाय!

क्यों कसकों मे तुम्हे बुलाऊँ
करुणा की मनुहारों से,
क्यों न अकेला झंकृत कर लूँ—
उर, पीड़ा के तारों से।

तुम हो जहाँ, वहीं से कह दो
एक बार-बस अंतिम बार—
"अपनी निष्ठुरता से बढ़कर
करता हूँ मैं तुझ को प्यार"।

जीवन के असंख्य शूलों को, समझूँ—
मृदु फूलों का सार
नीरव निशि में यदि सुन पाऊँ
कभी तुम्हारा यह उद्‌गार !

प्रेम-सहित बेड़ी पहनाओ,
विष दो, मुझ को है स्वीकार।
सत्य प्रेम के पद पर वारूँ
सौ-सौ जीवन सौ-सौ वार !

दुख ही मेरा सुख, निर्जन ही—
मेरा सोने का संसार,
रोना ही मेरा हँसना है
और प्यार ही प्राणाधार।

आँखों में प्रेमी की आओ,—
कोयल, चातक, मोर, चकोर !
प्रणय-कथा से भर दो सत्वर—
अवनि और अम्बर के छोर !

गाते-गाते इसी प्रतीक्षा-पथ पर
कभी तुम्हारा नाम,
सोच लिया है, इस जीवन का
कर दूँगा मैं पूर्ण विराम!

सन्ध्या की बुझती आभा में
बुझा हृदय का सब संताप,
छोड़ चमकती तारों-सी स्मृति,
रवि-सा चल दूँगा चुपचाप!

खुले हुए पिंजड़े में कब तक
बन्दी रह सकता है कीर?
फूटे हुए घडे में कब तक,
जीवन-धन, रह सकता नीर?

आँखों में है व्यथा,—बढेगी।
आगे है समाधि मेरी।
आँखों में आँसू भर-भर कर
याद करोगे फिर मेरी।

कब तक अपना जीवन बाँधूँ—
आशा के कृश धागे से ?
कैसे अपने दुख को टालूँ
इन आँखों के आगे से ?

गालों पर सूखे आँसू-सा
इस जग मे अब मेरा वास,
कब से मुझ को बुला रहा है
ऊपर वह नीला आकाश ।

जग की सूनी हाट ! न लेगा—
सुख देकर कोई दुख-भार
कब तक दलित-हृदय व्यापारी—
करे वेदना का व्यापार !

भर तो चुका हृदय का प्याला,
अब ढुलका ही देने दो !
ऐ मेरे प्यारे, दुनिया से
मुझे विदा ले लेने दो ।

पीछे से आकर पाओगे
शेष भस्म अरमानों की।
प्राण, तुम्हारी बाट जोहती,
सजा निराशा प्राणों की!

आँखो में आँसू भर, उसकी—
ठण्डी कर देना ज्वाला!
अन्त समय इतनी-सी इच्छा—
रखता है यह मतवाला।

नहीं शक्ति आँखों मे बाकी,
हिल-डुल कर जो कर लें बात!
देखो, ये मुँदती है पलकें,
वह आती है काली रात।

क्यों न प्रथम ही ज्ञात हुआ यह,
निष्फल है मेरा रोना!
सूनेपन से भरा हुआ है—
करुणा का कोना-कोना!

किसके अन्तस्तल मे भर दूँ—

अपनी आँखों का सदेश ?

किसने इस जग मे देखा है—

मेरे प्रियतम का शुभ देश ?

आह, किसे कैसे जतलाऊँ

अपने जी की जलन अपार ?

किसी शिथिल शीतल शय्यापर

सोया है सारा संसार !

कौन कह रहा है कानों मे,

कहूँ तुम्हीं से वारम्बार !

विना कहे क्या पीर न उर की

सुनते होंगे प्राणाधार !

नाथ, तुम्हारे वन में क्या—

खुलते कुसुमों के कोप नहीं ?

क्या पंखुड़ियो से आँसू-सी—

ढलका करती ओस नहीं ?

कभी, देखकर उसे, न सोचा—
होगा क्या तुमने मन में,
"यों ही आँसू बरसाता
होगा वह दुखिया निर्जन में!"

अलि से बिछुड़े किसी कुसुम की
करुणा का बिखरा शृंगार
लखकर क्या न हृदय में, प्रियतम,
आता होगा कभी विचार :—

"मेरे कारण, अखिल विश्व का—
अन्तर में भर कर संताप,
किसी वियोगी की अभिलाषा—
तरस रही होगी चुपचाप!"

आँखों के आगे, न किसी की—
फूटी वीणा—टूटी तान!
ऐ अनजान, तभी गाते हो—
दुखी जगत् में सुख के गान!

तभी न करुणा की कालिंदी—
अन्तर से झरती दिन रात।
तभी न पीड़ा की परिभाषा
पुलकित प्राणों को है ज्ञात।

हो भी यदि उर के कोने मे
भूला-भटका करुणा-कण,
क्षण भर भूल कृपणता अपनी,
मुझको दे दो जीवन-धन!

अपनी व्यथा बनाकर बादल
बरसा दो इस कुटिया पर!
दे दो मेरे ही नयनों में
अपने नयनों के निर्झर!

"छल-छल" नर्तन करे नयन में
जगती की संचित पीडा!
आँखों वाले इन आँखों मे
देखे आँखों की क्रीडा!

भूलो, इस प्रेमी ने की हो
यदि अनजाने में मनुहार!
बाँध टूट जाने दो उर का
बहने दो आँसू की धार!

अमरबेलि-सी बनकर स्मृति
मेरी आँखों में छाई है!
अन्तर् का सारा रस पीकर
देखो अब रँग लाई है!

अच्छा है, इसको बढ़ने दो,
कोने-कोने छाने दो!
ढक जाने दो जिससे सब कुछ,
केवल स्मृति रह जाने दो!

गत सुख की छाया ही मुझको
विकल बना देती है आह!
मरें निगोड़ी वे सुख-घड़ियाँ,
मरे हृदय की सारी चाह!

दुख, स्वागत, वेदना, व्यथा, आ !
भर ले मेरा भाग्याकाश !!
दूर रहे दुखिया आँखों से
सुख की छाया का आभास !

सुख-घड़ियों का रूठा रहना—
भी तो कितना सुन्दर है !
विकल-वेदना के आँगन में
सोना कितना मृदुतर है !

विरह-निशा की गाढी मदिरा
कितनी मीठी, मादक है !
काली चादर सूनी रातों की
किननी उन्मादक है !

ज्यों-ज्यों विरह-निशा बढ़ती है,
बढ़ता मेरा प्यार अपार !
जल-थल, अनिल-अनल, कण-कण में
मिलते हो तुम प्राणाधार !

पत्थर के टुकडों मे भी तो
मिलता प्रियतम का आभास!
उठा हृदय पर रख लेता हूँ
करता रहे जगत उपहास!

आँखों में दुख के बादल हैं,
रहे निरन्तर, रहने दो!
बहने दो प्रेमी को निशिदिन
दुख-सरिता मे बहने दो!

जल हो, थल हो, या कि अतल हो,
पल भर मिले सहारा,
जहाँ डूब जाये यह नौका
वह ही बने किनारा!

हृदय, उमंग, चाह, अभिलाषा,
मरती है, मर जाने दो!
आग लगे यौवन मे, इसको
मिट्टी में मिल जाने दो!

मेरे तुम्हारा प्रेम प्राण-धन,
उसपर मेरा क्या अधिकार ?
जिसे सिसकना ही प्यारा है,
मत बरसाओ उसपर प्यार !

मत छीनो मेरा सुख छलिया,
दुख ही सुख है, रहने दो !
जीवन की सूनी घड़ियों मे
करुण कहानी कहने दो !

अपनी करुणा के बदले मे
मत छीनो मेरा उन्माद !
तुमसे कहीं अधिक मीठी है,
नाथ, तुम्हारी मादक याद !

मेरी बेहोशी मे, प्यारे,
चुरा न लेना बेहोशी !
सुख की साँस लिया करता है
दुख में दुख का संतोषी !

मेरे अश्रु-कणों पर ढालो
मत, तुम आँसू की बूँदे !
कहीं आँख मेरी खुलते ही
मेरे अश्रु आँख मूँदे !

इस सूने पथ पर न बिछाओ
तुम अपने सुख के दाने
मन ये जाल तुम्हारे सारे
अब प्रेमी ने पहचाने !

जग का बन्दी हूँ, बन्धन से—
हिल-मिल गया हृदय का मौन !
सिसक-सिसक थक गईं उसासें,
जी की जलन जतावे कौन ?

बोलूँगा अब कभी न जग में
कुछ भी गर्व भरी बोली !
अब न भरूँगा मैं इन अंधी
अभिलाषाओं से झोली !

जग की निष्ठुरता के आगे
नत मस्तक है प्रेमी का;
बन्दी हूँ अतृप्ति का, किससे
हाल कहूँ अपने जी का!

धन कुवेर का क्या है मुझको
क्या है राज्य भुवन भर का!
कहीं बैठ दो बूँदों मे—
ढलका दूँगा सागर उर का!!

चाह नहीं है अब आँखो की
आँखों मे है ही क्या सार!
आँखें मूँद तुम्हें पाता हूँ—
तम मे प्रियतम प्राणाधार!

क्यो जग मे रह, व्यर्थ
प्रतीक्षा-पथ पर दें निशिदिन फेरी!
आँखों मे अनन्त की मिलकर
हों अनन्त आँखें मेरी!

विगत प्रेम अब पूजा बन कर
स्मृति के मन्दिर मे आया!
भेंट चढ़ाने को, प्रेमी का—
भग्न-हृदय लेकर आया!

लाल बनें कितनी भी आँखें,
[illegible], कलपाओ भी!
कुछ भी करो, तुम्हें पूजूँगा!
पूजन को ठुकराओ भी!!

व्यथित हृदय की पहली झाँकी,
उर के ये थोड़े उद्गार!
शेष, सिन्धु-सा छिपा हुआ है—
अन्तस्तल में हाहाकार!!

मूर्छित मदमाता सुख जिसमे—
पड़ा हुआ है आँखें मूँद,
उस पीडा के प्याले से ये
बरबस छलक पडीं "दो बूंद"!

कब तक मरु मे मोती बोऊँ

करूँ विजन मे करुण पुकार?

सुख से बिगडे श्रवण—

सुनेंगे कैसे उर का हाहाकार?

जहाँ न अपना ही उर करता

अपनी सत्ता पर विश्वास,

नभ में क्षीण-तारिका-जैसा

इस जग मे अब मेरा वास!

हृदयहीन बसते हो जिसमे,

जिसमे निष्ठुरता का राज,

उस जग से जाने दो मुझको

छोड अधूरी आहें आज!

मिलन-मार्ग ही में नभ-भू के

मिट जाने वाला जीवन,

मैं हूँ अखिल-जलद-बूंदों से

एक अलग बिछुडा जल-कण!

करुणा की कुण्ठित वीणा की
मै हूँ एक अधूरी तान!
मिट-मिट कर भी—
कभी न मिटने वाले है मेरे अरमान!

रहने भी दो, करुण-कथा—
कह-कह कर अब क्या पाना है?
हृदय, चलो अज्ञात लोक को,
इस जग से अब जाना है!

जहाँ न मुख से कहना पड़ता
"करता हूँ मैं तुझसे प्यार।"
जहाँ न जतलाया जाता हो
अपना एक-मात्र अधिकार!

मुँह न खोलना पड़े जहाँ पर—
उर की बात बताने को,
जहाँ न कण-कण में मिलता हो
केवल परिचय पाने को!

नीरव नयन हृदय की बातें—
जहाँ प्रकट कर देते हों,
जहाँ हृदय से मूल्य हृदय का
ज्ञात हृदय कर लेते हों !

केवल एक बार मिलते ही
हृदय परस्पर मिल जाते,
जहाँ न सुन्दर मुख वालों का
हृदय कभी निष्ठुर पाते !

एक बार अपना लेने पर
जहाँ न हो शंका-संदेह !
जहाँ प्रेम पर न्यौछावर हों—
लाखों जीवन, लाखों देह !

जहाँ प्रेम-योगी राजा हो
प्रेम प्रजा का हो जीवन,
ले जाने दो वहीं मुझे अब
अपने संचित करुणा-कण !

मिलन, वियोग एक से ही है
और एक ही है परिणाम
प्रेम-पन्थ के भटके पन्थी
बहक-बहक करते बदनाम !

मिलन समय के मादक दिन भी
सपने की सी रातें हैं।
सुख, दुख, हर्ष, विमर्ष, नित्य की
जानी-बूझी बातें है !

पीडा की बेहोशी में ही
आता हमको सच्चा होश !
लुटी हुई झोली मे से जब
हँसने लगता है संतोष !

मधुर-मिलन के स्मृति-चिह्नो तुम,
कभी न करना मेरी याद !
है वियोग ही अन्त जगत का,
मिलन घडी भर का उन्माद !

किन्तु, विदा लूँ कैसे तुमसे
ऐ जीवन-संगिनि पीड़ा!
हाय, हृदय में कभी न तुमने
की होती मादक क्रीड़ा!!

अयि अतृप्ति, ऐ रुदन अधूरे,
उर के आधे हाहाकार!
कभी समाप्त न होने वाली
ऐ मेरी असफल मनुहार!!

अभिलाषा की भस्म भग्न-उर के
उजड़े-बिखरे शृंगार!
कैसे तुम्हें छोड़ कर चल दूँ
करुणा सागर के उस पार!

सुख दुख, हँसना-रोना, जिनको
जीना मरना एक-समान,
उसे अधूरे ही प्यारे हैं
आशा, अभिलाषा, अरमान!

अच्छा है, उनकी निष्ठुरता—
अमर रहे, मेरी पीडा।
करते रहें अधूरे आँसू
आँखों में असफल क्रीडा!

खटका करे हृदय मे काँटा—
आती रहे किसी की याद,
यही प्रेमियों की इच्छा है,
यही प्रेम का है उन्माद।

दुख से छके हुए प्राणों मे
सिसका करे तरसती प्यास!
कई जन्म पूरे हों फिर भी—
रहें अधूरे ही—उच्छ्वास!

पाँव पखारे नित प्रियतम के
पुतली में यह पागल प्यार!
आँखें सीपी मे मोती-सी
संचित रखें सदा मनुहार!!

शुद्धि-पत्र

परिचय

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	३	भौरे	भौरे
५	१९	कवि जनोचित	कवि-जनोचित
६	१०	पृष्ट	पृष्ठ
६	११	कँपित	कम्पित
६	१३	उच्छ्ूवसित	उच्छ्वसित
६	१५	जज़ीरे	जंज़ीरे
७	२	क्रम	क्रम-
७	१०	स्मृति	स्मृति,
८	१३	कला	कला-
८	१७	शृङ्खला बद्ध	शृङ्खला-बद्ध
९	३	हृदय	हृदय
९	९	क्या	क्यो
९	११	निर्भय	निर्मम
९	१४	जैसे	जैसी
११	३	विद्युत् रेखा	विद्युत्-रेखा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
११	६	स्नेह-अर्ध्य	स्नेह-अर्घ्य
११	१५	परिणाम	परिमाण
१२	१९	अजस्त्र	अजस्र
१४	१७	भूले	भूल
१५	१०	दूसरो	दूसरी

आँखों में

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	७	किस्मत	क़िस्मत
७	६	प्यार ।	प्यार
२९	३	अँचल	अंचल
४०	४	बाद	वाद
४१	३	है	है
४४	२	शान्त	शान्ति
४९	१२	होगे	होंगे
६०	१५	मिलता	मिलना

पृष्ठ ८ पंक्ति ९, पृष्ठ १७ पंक्ति १, पृष्ठ २७ पंक्ति ७, पृष्ठ ४० पंक्ति ६, ११, १६, पृष्ठ ५० पंक्ति १० और पृष्ठ ५१ पंक्ति २ मे 'अन्तर' को 'अन्तर्' पढ़िये ।